कवि पद्मानन्दका वैराग्य-शतक

डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री, भोपाल, म० प्र०

पद्मानन्द श्रेष्ठ जैन कवि थे। उनका वैराग्यशतक सुप्रसिद्ध न होते हुए भी संस्कृतके मुक्तक शतक-काव्योंकी परम्परामें उत्कृष्ट स्थान रखता है।

प्राचीन वैदिक लोगोंका लगाव सप्त और शत इन दो संख्याओंकी ओर अधिक था। संहिताओंमें सप्तच्छन्दोसि, सप्तर्षयः, सप्तरश्मि, सप्तहोतारः, सप्त परिधि जैसे बहुतसे सप्तपूर्व पदवाले नामोंके साथ शतक्रतु, शतकाण्ड, शतपथ और शतशारद जैसे ढेरसे शतपूर्वक संज्ञा-शब्द प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि ये संख्यायें साहित्यमें समादृत हो गयी थीं और समाजमें भी उनको विशेषता दी जाती थी। विवाहकी सप्तपदी, मैत्रीकी सप्तपदीनता, लोकोंकी सप्त संख्या, धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी कल्पना, 'शतं वद मालिख' जैसी कहावतें ये सब इसी बातकी पोषक हैं। आधुनिक हिन्दी भाषा तकमें यह बात कहावतोंके रूपमें देखी जा सकती है। इसीलिये भगवद्गीता, दुर्गासप्तशती, गाहासत्तसई और आर्यासप्तशतीमें यदि इन दोनों संख्याओं का समुच्चय मिलता है तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इनके अनुकरण पर हिन्दीमें बिहारी सतसई और मतिराम सतसई जैसी उत्तम कृतियां प्रकाशमें आयीं। सप्त और शतके बाद यदि कोई अन्य संख्या अधिक लोकप्रिय थी तो वह थी त्रि (तीन)। वैदिक संहिताओंमें ही नहीं, धर्म और दर्शनके क्षेत्रमें भी यह संख्या बहुत प्रिय हुई। साहित्यकी त्रिशतियाँ इसीका परिणाम हैं। भर्तृहरिकी शतकत्रयी, पण्डितराजकी विलासत्रयी (भामिनी-विलास) आदि इसके उदाहरण हैं।

काव्यके क्षेत्रमें शतकोंका प्रारम्भ अमरुशतकके साथ हुआ। बादमें तो शृंगार-शतकोंकी परम्परा ही चल निकली। बहुतसे दूत-काव्य भी वस्तुतः शतक काव्य ही हैं। इस पद्धतिकी रचनाओंमें कुसुमदेवका दृष्टांत-कलिका-शतक; कामराज दीक्षितकी शृंगारकलिका त्रिशती, मूक कविके शतक-पंचक; वीरेश्वरका अन्योक्तिशतक; नरहरि, जनार्दन भट्ट, धनराज एवं रुद्रभट्टादिके शृंगार-शतकोंके अतिरिक्त स्तोत्र, भाव, नीति, उपदेश, अन्योक्ति और काव्यभूषण जैसे विषयों पर दर्जनों मुक्तक शतक काव्य मिलते हैं, यहाँ तक कि खड्ग-शतक भी।

शतक काव्योंकी परम्परामें वैराग्य-शतकोंका विशिष्ट स्थान है। अप्पय दीक्षित, धनद एवं जनार्दन भट्ट जैसे अनेक कवियोंने वैराग्य-शतककी रचना की। यों तो सोमप्रभाचार्यकी सूक्तिमुक्तावली, जम्बूगुरुका जिनशतक, गुमानी कविका उपदेशशतक आदि भी इसी कोटिकी रचनायें हैं। फिर भी वैराग्यशतक नामसे जो संस्कृत काव्य उपलब्ध होते हैं उनमें पद्मानन्दका वैराग्यशतक शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण रचना है। वैराग्यपरक काव्योंमें जैन कवियोंकी देनका यों भी विशिष्ट स्थान है। वैदिक-पौराणिक परम्पराके कवि प्रायः नीति, शृंगार और वैराग्यकी त्रयीको साथ लेकर चले हैं। उनकी दृष्टिमें कुमार, युवा और जरठ वयके लिये पृथक् रुचिके काव्यकी आवश्यकता थी। ये कवि गृहस्थ थे और जैसा कि वैदिक परम्परामें रहा है, गृहस्थाश्रमको जीवनका केन्द्र-बिन्दु मानकर चले हैं। इसलिये वैराग्य-काव्य लिखते हुए भी वे नीति और शृंगारमें अधिक डूबते दिखायी देते हैं। भर्तृहरि इसके अपवाद हैं। इन कवियोंने वैराग्यपरक रचनायें प्रायः अन्तिम वय में कीं जो वैराग्यपरक कम और भक्तिपरक अधिक हैं। जैन कवियोंका पथ इससे भिन्न रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जैन कवि सामान्यतया साधु या मुनि थे, घरबारसे विमुक्त उनका संघर्ष मानसिक था। वे मार, मन और इन्द्रियोंके लौल्यके विरुद्ध सक्रिय संघर्षमें रत थे। इसीलिये उनकी वैराग्योक्तियोंमें अधिक तन्मयता और ईमानदारी परिलक्षित होती है। जैन कवियोंका वैराग्यवर्णन कोरा बौद्धिक विलास नहीं है। यह उनकी साधनाका एक प्रमुख अंग है और पद्मानन्द इसी साधनाके कवि हैं।

कवि पद्मानन्द नागपुर या उसके समीपस्थ किसी स्थानके रहने वाले थे। इनके पिता श्रेष्ठी श्री धनदेव ने अपने गुरु श्री जिनवल्लभके उपदेशोंसे प्रेरित होकर नागपुरमें श्री नेमिनाथका मन्दिर बनवाया था। निश्चित ही ये श्रेष्ठ विद्वान् भी रहे होंगे। स्वयं उन्होंने कहा है—

सिक्तः श्रीजिनवल्लभस्य सुगुरोः शान्तोपदेशामृतैः,
श्रीमन्नागपुरे चकार सदनं श्रीनेमिनाथस्य यः।
श्रेष्ठी श्रीधनदेव इत्यभिधया ख्यातश्च यस्याङ्गजः-
पद्मानन्दशतं व्यधत्त सुधियामानन्द-संपत्तये।

उनका काल १७वीं शती ईसवीके बादका जान पड़ता है। वे शाकिनी आदि तांत्रिक शब्दोंसे परिचित हैं। उन्होंने जयदेव, भर्तृहरि और पण्डितराजको पढ़ा था और इन पर उक्त कवियोंकी यत्र-तत्र छाया भी है। शतकके अन्तमें वे कहते हैं कि जो आनन्द मेरे शतकको सुनने में है, वह न तो पूर्णेन्दुमुखीके मुख में है, न चन्द्रबिम्बके उदय में है, न चन्दनके लेप में है और न अंगूरका रस पीने में है :—

संपूर्णेन्दुमुखीमुखे न च न च श्वेतांशुबिम्बोदये,
श्रीखण्डद्रवलेपने न च न च द्राक्षारसास्वादने।
आनन्दः स सखे न च क्वचिदसौ किंभूरिभिर्भाषितैः,
पद्मानन्दशते श्रुते किल मया यः स्वादितः स्वेच्छया।

पण्डितराज जगन्नाथने कृष्णभक्तिके विषयमें भी यही बात कही थी—

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः,
स्वर्यां तेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः।
सत्यं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता,
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः॥ शा० वि० ७

पण्डितराज बड़े काव्यशिल्पी थे। इसलिये उनके रचनास्तरका ऊँचा होना स्वाभाविक है। फिर भी एक अन्तर तो स्पष्ट है कि पद्मानन्दकी 'रम्भाधर' में रुचि नहीं है। यह अन्तर, जैसा कि ऊपर कहा है, वैष्णव और जैन कवियोंमें सर्वत्र मिलेगा।

शतकके प्रारम्भमें पद्मानन्दने जिनपतिकी स्तुति की है जिनके लिए त्रिलोकी करतल पर लुठित मुक्ताके समान तो हैं ही, वे हास, विलास और त्राससे तीनोंके रभसोंसे मुक्त हैं। वह उन योगियोंकी वन्दना करते हैं जिन्होंने अपने विवेकके वज्रसे कोपादि पर्वतोंको चूर-चूर कर डाला है, योगाभ्यासके परशुसे मोहके वृक्षोंको काट दिया है, और संयमके सिद्ध-मंत्रसे तीव्र कामज्वरको बाँध दिया है। वह उन साधुओंके सम्मुख प्रणत हैं जिन्होंने अतुल प्रेमांचित प्रेयसीको शाकिनीके समान एवं प्राण-समा लक्ष्मीको सर्पिणीके सदृश छोड़ दिया है और जो चित्रागवाक्षराजि वाले महलका उपभोग वल्मीकके समान करते हैं। वह उस महापुरुषको बड़ा मानते हैं जो पर-निन्दामें मूक, पर नारीके देखनेमें अंध, और परधनके हरणमें पंगु हैं। इनके मतमें माध्यस्थ्य वृत्तिसे रहनेवाला ही योगी और प्रणम्य है और यह माध्यस्थ्य वृत्ति है—आक्रोशसे पीड़ित न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होना, चाटुकारितासे प्रसन्न न होना, दुर्गन्धसे बाधित न होना, सुगन्ध पर मुग्ध न होना, स्त्री रूपसे आनन्दित न होना और मरे श्वानसे भी घृणा न करना। बड़े सुन्दर ढंगसे उन्होंने योगीकी पहचान स्पष्ट की है :

मित्रे रज्यति नैव, नैव पिशुने वैरातुरो जायते,
भोगे लुभ्यति नैव, नैव तपसि क्लेशं समालम्बते।
रत्ने रज्यति नैव, नैव दृषदि प्रद्वेषमापद्यते,
येषां शुद्धहृदां सदैव हृदयं, ते योगिनो योगिनः॥

अर्थात् सच्चे योगी वे हैं जिनका शुद्ध हृदय मित्रको पाकर उल्लसित और पिशुनको पाकर वैरातुर नहीं होता। भोगमें लुब्ध और तपमें क्लेषित नहीं होता और जो रत्नमें अनुरक्ति और पत्थरमें द्वेष भाव नहीं प्रदर्शित करता।

पद्मानन्दने प्रारम्भके श्लोकोंमें जो उपर्युक्त बातें कहीं हैं, वे प्रायः वे ही हैं जिन्हें सभी भारतीय साधक कहते आ रहे थे। फिर भी, पद्मानन्दके कहनेके ढंगमें नवीनता है। उसमें उनका अपनापन झलकता है और जहाँ उन्होंने रूपकका आश्रय लिया है, वहाँ मौलिकताका भी। 'न च न च', 'नैव नैव' 'मम मम' के प्रयोगका उन्हें शोक है। उन्होंने एक अर्थको व्यक्तिके लिए भिन्न-भिन्न क्रियाओंका आश्रय लिया है और आवृत्तिसे बचनेकी चेष्टा की है। यथा-दूयते, बाध्यते, विद्वेष्यते, वैरातुरो जायते, क्लेशं सभालम्बते एवं प्रद्वेषमापद्यते और इसी प्रकार—समानन्द्यते, सम्प्रीयते, रज्यते, नन्दति, लुभ्यति आदि।

प्राचीन मुनियों, साधुओं और विरागियोंने—चाहे वे किसी पन्थके अनुयायी रहे हों—समान रूपसे नारीकी निन्दा की है। भाषाके कवियोंमें कबीर तो सबसे आगे हैं। किन्तु इसका कारण नारीके प्रति हेय दृष्टि नहीं है। किसी भी मुनि या कविने माता, बहिन और पुत्रीके प्रति अश्रद्ध भाव नहीं व्यक्त किया। बात यह है कि साधन पथ पर अग्रसर होते हुए व्यक्तिको दो ही आन्तरिक शत्रुओंसे सर्वाधिक जूझना पड़ता है और वे हैं अर्थ और काम। अर्थ तृष्णा और लोभको अर्थात् परिग्रहको जन्म देता है। घर छोड़कर वनमें कुटी बनानेवाले वहाँ भी गृहस्थकी तरह सम्पत्ति जोड़ने लग जाते हैं। इसीलिए कविने कहा था—

जोगी दुखिया जंगम दुखिया तापस के दुख दूना।
आशा तृष्णा सब घर व्यापै कोइ महल नहिं सूना॥

और काम तो किसीको नहीं छोड़ता। स्वयं अनंग रहकर भी वह साधकके अंग-अंगको मथित करता है चाहे जितना बड़ा विद्वान् हो और प्रयत्नशील भी हो, तो भी इन्द्रियाँ मनको खींच ही ले जाती हैं. ऐसा गीतामें कहा है। पुरुषके लिए नारी एवं नारीके लिए पुरुष परस्पर कामके उद्दीपक होते हैं। इसलिए पुरुष कवियोंने कामके आकर्षणसे बचनेके लिए नारीके आकर्षक अंगों, हावों-भावों एवं चेष्टाओंके प्रति अपने मनमें विरक्ति जाग्रत करनेकी चेष्टा की है। नारी कवि ऐसा नहीं करती क्योंकि पुरुषके प्रति नारीके आकर्षणकी प्रक्रिया भिन्न होती है। अतः वैराग्यके ग्रन्थोंमें नारीकी जो निन्दा प्राप्त होती है, वह आपाततः निन्दा दिखती है। वस्तुतः वह अपने दुर्बल मनको वशमें करने एवं कामके प्रति विरक्ति जाग्रत, करनेके लिए एक साधन मात्र है। वह काम-प्रवृत्ति और उसके उद्दीपकोंकी निन्दा है किन्तु आश्रयाश्रयि-भावसे नारी-निन्दा प्रतीत होती है। पद्मानन्दने भी सबसे पहले दस-पन्द्रह श्लोकोंमें यही किया है। वे कहते हैं—

मध्ये स्वां कृशतां कुरङ्गक-दृशो भ्रूनेत्रयोर्वक्रतां,
कौटिल्यं चिकुरेषु रागमधरे मान्द्यं गति-प्रक्रमे।
काठिन्यं कुचमण्डले तरलतामक्ष्णोर्निरीक्ष्य स्फुटं,
वैराग्यं न भजन्ति मन्दमतयः कामातुरा ही नराः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यमें कृशता, नेत्रों और भृकुटियोंमें वक्रता, बालोंमें कुटिलता, ओठमें रक्तता, गतिमें मन्दता, कुच-मण्डलमें कठोरता, दृष्टिमें तरलता इतनी सारी अस्वाभाविक बातें स्त्रीमें स्पष्ट दिखती हैं, फिर भी लोगोंका मन उनकी ओरसे नहीं हटता। शंकराचार्यने कहा था—

अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशन-विहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुंचत्याशापिण्डम्।

और इसी सरल बातको पद्मानन्द साहित्यिक शैलीमें कहते हैं—

पाण्डुत्वं गमितान् कचान् प्रतिहतां तारुण्य-पुण्य-श्रियम्,
चक्षुः क्षीणबलं कृतं श्रवणयोर्बाधिर्यमुत्पादितम्।
स्थानभ्रंशमवापिताश्च जरया दन्तास्थिमांस-त्वचः,
पश्यन्तोऽपि जडा हहा हृदि सदा ध्यायन्ति तां प्रेयसीम्॥

केश सफेद हो गये, जवानीकी चमक-दमक नष्ट हो गयी, आँखोंकी शक्ति दुर्बल पड़ गयी, कानोंमें बहरापन आ गया, बुढ़ापेके कारण दाँत, मांस और त्वचा सब अपना स्थान छोड़ गये। फिर भी ये मूर्ख हैं कि अपना ध्यान प्रेयसीकी ओरसे नहीं हटाते। और पद्मानन्दकी यह धिक्कृति उन कवियोंके लिये भी है जो जीवन भर आपादमस्तक शृंगारमें ही डूबे रहते हैं।

एक हाथी है महामिथ्यात्व का। चारों क्रोधादि कषाय उसके पाँव हैं। व्यामोह उसकी सूँड है। राग और द्वेष ये दो उसके बड़े-बड़े दाँत हैं। दुर्वार मार उसका मद है। जो इस मत्त हाथीको तत्त्व ज्ञानके अंकुशकी सहायतासे अपने चातुर्यके द्वारा वशमें कर लेता है, वह तीनों लोकोंको जीत लेता है। कितने सुन्दर और सर्वांगपूर्ण रूपकके द्वारा कविने अपनी बातको प्रस्तुत किया है—

क्रोधाद्युग्रचतुष्कषायचरणो व्यामोहहस्तः सखे,
रागद्वेषनिशातदीर्घदशनो दुर्वारमारोद्धुरः।
सज्ज्ञानांकुशकोशलेन स महामिथ्यात्वदुष्टद्विपो
नीतो येन वशं वशीकृतमिदं तेनैव विश्वत्रयम्॥

एक दूसरा परम्परित रूपक देखिये—

सज्ज्ञानमूलशाली दर्शनशाखश्च येन वृत्ततरुः।
श्रद्धाजलेन सिक्तो मुक्ति फलं तस्य स ददाति॥

किसी वृक्षको रोपें तो पहले उसकी जड़ें भूमिमें लगती हैं। उसे जलसे सींचते हैं। तब उसमें शाखायें फूटती हैं और तब फल लगते हैं। सच्चारित्र्य भी एक वृक्ष है। सत् ज्ञान उसका मूल है। दर्शन उसकी शाखायें हैं। श्रद्धाका जल उसे सींचता है तब कहीं कष्ट-मुक्तिका फल उसमें लगता है।

सांसारिक विषयोंकी ओरसे मन हटानेके लिये शरीरको चरम परिणतिको देखना-समझना आवश्यक है। इससे जीवनकी यथार्थताका भान होता है और मोह दूर होकर निःसंगताकी प्राप्ति होती है। इसीलिये सारे सन्तोंने मृत्युके भयावह दृश्य भक्तोंके सामने प्रस्तुत किये हैं। पद्मानन्दने भी कहा—

भार्येयं मधुराकृतिर्मम मम प्रीत्यन्वितोऽयं सुतः,
स्वर्णस्यैव महानिधिर्मम ममासौ बन्धुरो बन्धवः।
रम्यं हर्म्यमिदं ममेत्थमनया व्यामोहितो मायया,
मृत्युं पश्यति नैव दैवहतकः कुद्धं पुरश्चारिणम्॥

यह मेरी सुन्दर स्त्री है। यह मेरा प्यारा बेटा है। सोनेकी बड़ी राशि मेरे पास है। मेरा भातृ-स्नेही भाई है। यह शानदार महल मेरा अपना है। अभागा व्यक्ति इसी मायामें खोया रहता है और सामने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आते हुए क्रुद्ध काल (मृत्यु) को नहीं देखता। और जब मृत्यु पकड़ ले जाती है तो सन्तान, धन, महल कोई साथ नहीं जाता। साथ जाते हैं केवल पुण्य और पाप :

नापत्यानि न वित्तानि न सौधानि भवन्त्यहो।
मृत्युना नीयमानस्य पुण्यपापे परं पुनः॥

मृत्युसे कौन बच सकता है? रावणने बुढ़ापेको अपनी खाटके पायेमें बाँध रखा था, वह भी चला गया। हनुमान् जो अपनी भुजाओं पर द्रोण पर्वत ही उखाड़ कर ले आये थे, वे भी चले गये। जिन रामने त्रिलोकीके सबसे बड़े वीर रावणको मार डाला था, वे भी चले गये। फिर औरोंकी तो बात ही क्या?

बद्धा येन दशाननेन नितरां खट्वैकदेशे जरा,
द्रोणाद्रिश्च समुद्धृतो हनुमता येन स्वदोर्लीलया,
श्रीरामेण च येन राक्षसपतिस्त्रैलोक्यवीरो हतः,
ते सर्वेऽपि गताः क्षयं विधिवशात् कान्येषु तद्भोः कथा।

बालक भोजने भी मुंजदेवके प्रति ऐसी बात कही थी। शंकराचार्यने भी बात सीधी-सादी भाषामें कही थी—

बालस्तावत् क्रीडासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः,
वृद्धस्तावच्चिन्ता-मग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः।

कि बचपन खेलमें बीत जाता है, यौवन तरुणीके प्रेममें चला जाता है और बुढ़ापेमें तरह-तरहकी चिन्तायें आ घेरती हैं। आत्मचिन्तनके लिये समय ही नहीं मिल पाता। यह तथ्य कैसी प्रभावकारी भाषामें प्रस्तुत किया है पद्मानन्द ने :

बाल्ये मोहमहान्धकार-गहने मग्नेन मूढ़ात्मना,
तारुण्ये तरुणी - समाहृत-हृदा भोगैकसंगेच्छुना,
वृद्धत्वेऽपि जराभिभूतकरणग्रामेण निःशक्तिना,
मानुष्यं किल दैवतः कथमपि प्राप्तं हतं हा मया।

जैसे शीतलता और सुगन्धके पूर्ण होनेपर भी सर्पोंके संसर्गके कारण चन्दन वृक्ष पान्थके लिए व्यर्थ होता है ऐसे ही कुटिल आचारवाले दुर्मुंहे लोगोंके संगसे जीवन निष्फल हो जाता है—

श्रीखण्डपादपेनेव कृतं स्वं जन्म निष्फलम्।
जिह्मगानां द्विजिह्वानां सम्बन्धमनुरुन्धता॥

यहाँ निष्फलम्, जिह्मगानां और द्विजिह्वानां इन श्लिष्ट शब्दोंके प्रयोगने श्लोकमें चार चाँद लगा दिये हैं।

किसीको सुन्दरीसे प्यार ही करना हो, तो पद्मानन्द द्वारा प्रस्तावित प्रियासे प्यार करे :

औचित्यांशुकशालिनीं हृदय हे शीलांगरागोज्ज्वलां
श्रद्धा-ध्यानविवेक-मण्डनवतीं कारुण्यहारांकितां।
सद्बोधांजनरञ्जिनीं परिलसच्चारित्रपत्रांकुरां
निर्वाणं यदि वांछसीह परमक्षान्तिप्रियां तद्भज॥

यदि तुम्हें निर्वाण (शान्ति या मुक्ति) चाहिये तो उस क्षान्तिरूपिणी प्रियासे प्यार करो जो औचित्य की साड़ी या चादर धारण करती है, शीलका अङ्गराग लगाती है, श्रद्धा, ध्यान और विवेकके आभूषण पहनती है, कारुण्यका हार धारण करती है, सद्ज्ञानका अञ्जन लगाती है और श्रेष्ठ चरित्रके पत्रांकुरोंसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनेको सजाती है। पद्मानन्दकी कल्पनासे प्रसूत यह परम्परित रूपक सर्वथा अनूठा है। यों भी सांगरूपक प्रस्तुत करनेमें यह कवि सिद्धहस्त है।

पद्मानन्दके मतमें दान और तप यदि वैराग्य-युक्त मनसे किये जायँ तभी सार्थक होते हैं। यदि अङ्गनामें लावण्य ही न हुआ तो केवल विभ्रमों या हाव-भावोंकी उछलकूद कितना आकर्षण उत्पन्न कर सकेगी? इसी प्रकार यदि अन्तर्विवेक उत्पन्न न हुआ तो सारे शास्त्र, जप, तप व्यर्थ हैं क्योंकि ये सब तो साधनमात्र हैं—साध्य है तत्त्वज्ञान, विवेकख्याति। इसीलिए वे कहते हैं कि सारी कलायें जान लीं तो क्या हुआ? उग्र तप भी तप लिया तो क्या? यदि कलङ्करहित यश भी कमा लिया तो क्या? यदि विवेककी कली न खिली? विवेक ही तो है जो मनुष्य-मनुष्यमें अन्तर स्पष्ट करता है अन्यथा हंस और बगुले, कोकिल और काक तथा सुवर्ण और हल्दीमें क्या अन्तर? रङ्ग तो दोनोंका एक ही है। किन्तु चाल, बोली और मूल्य क्रमशः इनके महत्त्वमें अन्तर स्पष्ट करते हैं। इसी प्रकार मनुष्योंकी गरिमा और महत्तामें न्यूनाधिक्य उनके गुणोंके कारण होता है—

शौक्ल्ये हंस-बकोटयोः सति समेयद्वद्गतावन्तरं,
काष्ण्यें कोकिलकाकयोः किल यथा भेदो भृशं भाषिते,
पैत्ये हेमहरिद्रयोरपि यथा मूल्ये विभिन्नार्घता,
मानुष्ये सदृशे तथार्यखलयोर्दूरं विभेदो गुणैः॥

और जब विवेक ज्ञान या तत्त्वार्थबोध हो जाता है तो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कषाय चतुष्क कुछ नहीं बिगाड़ पाते। यही साधना की चरम उपलब्धि है। पद्मानन्दने पूरे विश्वासके साथ कहा है—

ता एवैताः कुवलयदृशः, सैष कालो वसन्तस्,
ता एवान्तः शुचिवनभुवस्ते वयं, ते वयस्याः।
किं तूद्भूतः स खलु हृदये तत्त्वदीपप्रकाशो,
येनेदानीं हसति हृदयं यौवनोन्मादलीलाः॥

कमलनेत्री सुन्दरियाँ अब भी वे ही हैं, वसन्त काल वही है, सुन्दर वन प्रदेश भी वे ही हैं, हम भी वे ही हैं और मित्रगण भी वे ही हैं किन्तु तत्त्वदीपका प्रकाश हो जानेसे अब हृदय यौवनकी उन्मत्त लीलाओं में डूबता नहीं अपितु उन पर हँसता है।

सम्भवतः यह श्लोक "यः कौमारहरः स एव हि वरः" आदि सुप्रसिद्ध शृंगारी श्लोकका प्रत्युत्तर है। वाणीके विषयमें तो कविका कथन प्रत्येक कवि, वक्ता या लेखकको अपने सामने बड़े अक्षरोंमें लिख कर टाँग लेना चाहिये—

ललितं सत्य-संयुक्तं, सुव्यक्तं सततं मितम्।
ये वदन्ति सदा तेषां, स्वयं सिद्धैव भारती॥

जो लोक सत्य, मधुर, स्पष्ट (जिसे सब समझ सकें), परस्पर सम्बद्ध और नपी-तुली बात बोलते हैं, उन्हें वाणी सिद्ध हो जाती है। वे जो बोलते हैं, वह व्यर्थ नहो जाता। और पद्मानन्द निश्चय ही सिद्धवाक् कवि थे।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org